© 2018 IJSRSET | Volume 4 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
International Journal of Scientific Research in Science, Engineering and Technology

श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध का अलंकारात्मक वैशिष्ट्य

गीतांजलि तिवारी (शोधछात्रा)
एम.ए. संस्कृत
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म0प्र0)

भागवत के दशम स्कन्ध में सभी प्रमुख अलंकारों की योजना न्यूनाधिक रूप में है, किन्तु विषयानुसार कुछ अत्यन्त भावोत्कर्षक तथा रसोद्दीपक हैं। शब्लंकारों में अनुप्रास, श्लेषादि का प्रयोग है। अर्थालंकारों में प्रिय अलंकार प्रायः उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि हैं। कहीं–कहीं अत्युक्ति आदि का स्वभावोक्ति के साथ बहुत ही सुन्दर और सफल प्रयोग किया गया है। भगवान् कृष्ण के सम्बन्ध में विरोधाभास और अत्युक्ति या अतिशयोक्ति आदि अलंकार स्वभावोक्ति के ही समान कार्य करते हैं, क्योंकि ब्रह्म या हरि पर सब प्रकार का विरोध चरितार्थ होता है तथा अत्युक्ति उनके लिए स्वभावोक्ति के ही समान है। इसी प्रकार उनके लिये उत्प्रेक्षा भी बहुत ही उपयुक्त अलंकार है, क्योंकि उनके सत्य स्वरूप का मूल मंत्र ज्ञात होता हुआ भी अज्ञात सा ही है। उस सत्य स्वरूप को मनुष्य कहीं तक उसे वैसा ही जान सकता है, जैसा और जहाँ तक वह उसे प्रतीत होता है। इसलिए प्रतीति परिचायक उत्प्रेक्षा ही हरि–लीला पर चरितार्थ होती है। वर्णनात्मक प्रसंग में भी दिव्यवस्तु के वर्णन में उत्प्रेक्षा का ही प्रयोग ठीक होता है। लोकोक्ति उदाहरण आदि अलंकारों का प्रयोग वर्ण्यवस्तु को स्पष्ट करने के लिए भागवत में बहुत ही चारूता और कुशलता से किया गया है। श्रीमद्भागवत में अलंकारों का प्रयोग प्रत्येक प्रसंग में सहज–स्वाभाविक रूप से अनायास ही हुआ है। कहीं भी ऐसा अनुभव नहीं होता कि अलंकारों का बलात् तथा अनावश्यक प्रयोग किया गया है। यही कारण है कि अलंकार भागवतीय भाषा के सहजोद्भूत अवयव बन गये हैं। वे कविता की प्रत्येक पंक्ति में पूर्णरूपेण ऐसे घुलमिल गये हैं कि वे उसक अभिन्न अंग के समान प्रतीत होते हैं। भागवत में आये हुए अलंकार अभिव्यक्ति को अनुपम और आकर्षक बनाते हैं। तथा काव्य–सौन्दर्य का सम्वर्धन करते हैं। ये भावों को अधिक मर्मस्पर्शी और संवेदनीय बनाते हैं।

शब्द के दो रूप होते हैं–ध्वनि (Sound) तथा अर्थ (Sense) ध्वनि द्वारा शब्दालंकार की सृष्टि होती

है और अर्थ द्वारा अर्थालंकार की। शब्दालंकार काव्य का संगीत धर्म है और अनुप्रास इसका आधारभूत तत्व है। भावानुसार अनुप्रास द्वारा संगीतमय वातावरण उत्पन्न होता है। गोपियों के गीत वेदना और पीड़ा के गीत हैं। वे कृष्ण की विरह–व्यथा से व्याकुल हैं, वे कृष्ण के साथ एकान्त की ठिठोली, हंसीमजाक और प्रेम क्रीड़ा का ध्यान करती हैं, धीरे–धीरे मधुर प्रलाप करती हैं, रोती हैं, प्रेम की याचना करती हैं–

करसरोरूहं कान्त कामदं
शिरहि धेहि नः श्रीकरग्रहम्।।
बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरू–
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः।।
स्वैरूत्तरीयैः कुचकुंकुमाकितै–
रचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे।।

इस प्रकार स्थान–स्थान पर अनुप्रास की छटा सराहनीय है, अनुप्रास का प्रयोग स्वाभाविक और सार्थक है। भागवत में उन्हीं उपमाओं और दृष्टान्तों का प्रयोग किया गया है, जो नित्यप्रति जीवन के अनुभव के भीतर आती हैं तथा जिन्हें समझने में सामान्य जन को विशेष क्लेश उठाना नहीं पड़ता है। इन तथ्यों को हृदयंगम करने के लिए कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं–

(1) वर्षाकाल का दृश्य है। नदी के वेग से बालू एक स्थान पर इकट्ठा हो जाता है और फिर उस वेग की गति बदल जाने पर वही बालू वहाँ से हट जाता है, नदी तट का यह दृश्य प्रतिदिन हमारे सामने उपस्थित होकर इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि काल से ही प्राणी संयुक्त होते हैं और काल से ही वियुक्त होते हैं। काल ही इन समग्र व्यापारों का कारण है। यह घटना कितनी हृदयंगम और मर्मस्पर्शी है। दैनन्दिन की सच्ची घटना पर आश्रित है–

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन बालुकाः।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः।

भागवत में रूपक अलंकर का आश्रय लेकर किसी विशिष्ट वस्तु का बहुत ही सांगोपांग वर्णन मिलता है। यह वर्णन इतना विस्तृत तथा विशद है कि वह विशिष्ट पदार्थ वर्णन के समकाल ही मानसनेत्रों के सामने

उपस्थित हो जाता है। ऐसे प्रसंग में भवाटती का विशद वर्णन भागवत के पञ्चम स्कन्ध में दिया गया है–

अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल
उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा।
अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधार्दितो
मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित्।।
द्रुमेषु रंस्यन् सुतदारवत्सलो
व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने।
क्वचित्प्रमादाद् गिरिकन्दरे पतन्
वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः।।[1]

चन्द्रदेव ने प्राची दिशा के मुखमण्डल पर अपने शीतल किरण रूपी करकमलों से लालिमा की रोली – केशर मल दी, जैसे बहुत दिनों के बाद अपनी प्राणप्रिया पत्नी के पास आकर उसके प्रियतम पति ने उसे आनन्दित करने के लिए किया हो–

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिम्पन्नरूणेन शन्तमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः।।[2]

प्रत्येक पद श्रृंगार रस पोषक है, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और श्लेष भी संयोग श्रृंगार रस का पोषण करने वाले हैं। इसी प्रकार कृष्ण को आया देखकर गोपियाँ एक साथ उठकर खड़ी हो गईं, मानो प्राणहीन शरीर में दिव्य प्राणों का संचार हो गया हो–

उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम्।[3]

जिन्होंने अपने मन और प्राण मुझ (कृष्ण) में समर्पित कर दिये हैं, उनकी कामनाँ संसार की ओर नहीं जाती हैं– भुने या उबले बीज फिर अंकुर रूप में उगने योग्य नहीं होते हैं–

न मय्यावेशिनधियां काम कामाय कल्पत।

भर्जिता क्वथिता धाना प्रायोग बीजाय नेष्यते।।[4]

यहाँ पर वर्ण्यवस्तु को स्पष्ट करने के लिए दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग बहुत ही चारूता और कुशलता के साथ किया गया है। ऊपर प्रथम पंक्ति उपमेय वाक्य है और द्वितीय पंक्ति उपमानरूप में उसकी पुष्टि के लिए दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत की गई है, अतः दृष्टान्त अलंकार है। 'न मय्योवेशित – धियां कामः और भर्जिता क्वथिता धाना' 'कामाय' और 'बीजाय' 'न कल्पते' और 'नेष्यते' – में परस्पर बिम्बप्रतिबिम्ब सादृश्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवत में सुन्दर अनेक अलंकारों के उदाहरण मिलते हैं। कवि ने अलंकारों की योजना क लिए इनका प्रयोग नहीं किया है, वे तो अनायास ही कवि की भावाभिव्यञजना में स्वतः आ गये हैं। अलंकार कवि के साध्य नहीं, साधन मात्र हो सकते हैं। भागवतकार तो सर्वतोमुखी प्रतिमासम्पन्न भावुक कवि थे। उनकी रचना में अन्तः और बाह्य जगत् का अपूर्व मिश्रण है, वे मानवीय भावनाओं के सच्चे पारखी हैं। स्वाभाविक रूप से आये हुए ये अलंकार हमारी भावनाओं और संवेदनाओं को अधिक उदात्त और स्पृहणीय बनाते हैं। यही तो श्रीमद्भागवत के अलंकारों का वैशिष्ट्य है।

संदर्भ

1. भागवत–प×चम्–स्कन्ध
2. भागवत– 10, 29, 02
3. भागवत– 10, 32, 03
4. भागवत– 10, 22, 26